International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 16-06-2020; Accepted: 02-07-2020; Published: 17-07-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 4; 2020; Page No. 37-40

स्त्री-जीवन और संघर्ष: समकालीन उपन्यासों के आइने में

उमा देवी

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी), मनोहारी देवी कनोई महिला महाविद्यालय, डिब्रुगढ़, असम, भारत

सारांश

स्त्री हर समाज, धर्म, जाति, वर्ग और कालखण्ड में पुरुषत्व के अहंकार की शिकार रही है। उसके सपने, संवेदनाएँ, योग्यताएँ अमानवीय तथा जर्जर मान्यताओं की जकड़न से दम तोड़ते रहे हैं। पुरुषसत्तात्मक समाज ने सदियों से उसका शोषण और उत्पीड़न ही किया है। कालांतर में समाज और साहित्य में स्त्री-चिंतन का प्रादुर्भाव आधुनिक शिक्षा तथा विचारों की देन है।

बीसवीं सदी स्त्री के लिए वरदान साबित हुई है। मन में जल रही मुक्ति के लौ को आधुनिक विचारों की हवा ने ज्वाला का रूप दिया। फलस्वरूप स्त्री-जीवन तथा स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आये और यह परिवर्तन आज भी हो रहे हैं। समकालीन स्त्री उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में स्त्री के बदलते जीवन संदर्भ, बदलती मानसिकता तथा संघर्ष को विशेष स्थान दिया। यह अस्तित्व, अस्मिता और समता के लिए संघर्षरत स्त्री की कथा है। कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, चित्रा मुद्गल जैसी अनेक लेखिकाओं ने स्त्री-चिंतन और स्त्री-लेखन को सार्थकता दी। इनके उपन्यासों में चित्रित स्त्री पूर्वाग्रहों से मुक्त, स्वतंत्र, शिक्षित, आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी, सबला तथा निर्णय क्षमता से युक्त स्त्री है। वह अपने कार्यों और विचारों से बदलते मूल्यों को अभिव्यक्त करती है। विवाह, मातृत्व जैसे मूल्यों पर सवाल उठा रही है। जहाँ एक ओर वह पुरुषसत्ता का विरोध करती है तो दूसरी ओर उन परंपराओं को स्वीकारती भी है जो मानवता के पोषक हैं।

समकालीन स्त्री अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए सारे संबंधों को तिलांजलि देने तत्पर दिखती है। परिणामतः व्यक्ति-व्यक्ति संबंध, व्यक्ति-समाज संबंध, स्त्री-पुरुष संबंध नये अर्थ ग्रहण कर रहे हैं। वहीं भूमंडलीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न बाजारवादी तथा उपभोक्तावादी संस्कृति में स्त्री-शोषण के कई नए रूप भी उभरकर आ रहे हैं।

मूल शब्द: स्त्री-लेखन, शोषण, पुरुषसत्ता, स्वाभिमान, संघर्ष, मुक्ति।

प्रस्तावना

इतिहास साक्षी है, हर समाज, धर्म, जाति, वर्ग तथा कालखण्ड में स्त्री विवशतापूर्ण जीवन जीने को मजबूर रही है। पितृसत्ता से वह सदैव शोषित तथा उत्पीड़ित रही है। पुरूष ने कभी उसके महत्व को स्वीकार नही किया। उसकी दृष्टि में स्त्री निम्न और अयोग्य थी। उसके आत्मिक और मानसिक विकास के सारे रास्ते बंद पड़े थे। निरंतर चल रहे इस लांछन तथा दमन ने स्त्री को भी भाग्यवादी बनाकर रख दिया था, परन्तु आधुनिक विचारों के आगमन से तथाकथित रूढ़ मान्यताओं के महल ढहने लगे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीन मार्ग के अन्वेषण की चेष्टा होने लगी।

उल्लेखनीय है कि बीसवीं सदी के अंतिम दो-तीन दशकों में स्त्री-जीवन तथा स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। शिक्षा, रोजगार के अवसर, आर्थिक स्वतंत्रता से वह मंडित होने लगी। उसकी दुर्बलताओं का प्रस्फुटन विद्रोह, आक्रोश और संघर्ष के रूप में हुआ है। सामाजिक परिवर्तन संवेदनशील साहित्यकारों को सदैव आंदोलित करते हैं। साहित्यकार का यही आंतरिक द्वन्द्व साहित्य के रूप में प्रकट होता है। हिन्दी साहित्य में भी इस दौरान स्त्री-उपन्यासकारों ने बदलते हुए जीवन संदर्भ में स्त्री की बदली हुई मानसिकता तथा पितृसत्ता से संघर्ष को विशेष स्थान दिया। स्त्री-लेखन अस्तित्व, अस्मिता तथा समता हेतु जंग लड़ती स्त्री की कथा कहता है। स्त्री-मुक्ति में स्त्री-लेखन का विशेष महत्व है। यह अनुभूत, भोगे हुए यथार्थ का चित्रण है। स्त्री होने की पीड़ा स्त्री ही जानती है। इस संबंध में राजकिशोर कहते हैं- "पुरुष लेखक कितनी भी संवेदनशीलता दिखाए, वह स्त्री का अपना वृत्तांत नहीं लिख सकता। स्त्री के पक्ष में लेखन पुरुष का आदर्शवाद है, जबकि अपने पक्ष में स्त्री का लेखन यथार्थवाद है।"[1]

समकालीन साहित्य में कृष्णा सोवती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, अलका सरावगी, मन्नू भंडारी आदि अनेक लेखिकाओं ने स्त्रीवादी-चिंतन को विशिष्ट मुकाम पर पहुँचाया है। इनके उपन्यासों में चित्रित स्त्री पुरातन विचारों से पृथक, स्वतंत्र, शिक्षित, स्वावलंबी, स्वाभिमानी, सबला तथा निर्णय क्षमता से युक्त आधुनिक स्त्री है। वह अपने सिद्धांत और दायरे स्वयं निश्चित करती है। इन लेखिकाओं ने नारी जीवन के बदलते मूल्यों को अत्यंत बेबाकी से अपने उपन्यसों में चित्रित किया है। यहाँ एक ओर पितृसत्ता की अस्वीकृति है तो दूसरी ओर उन परंपराओं की स्वीकृति भी है जो मानवता के पोषक हैं।

स्त्री, पुरुष की जैविक रूप से अपनी विशिष्ट पहचान है। सामाजिक,

धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक रूप से दोनों की स्थिति में पर्याप्त अंतर विद्यमान है। सामाजिक स्तर पर पुरुष का स्वत्व इतना गर्भित और सामंती रहा, जिसके तले स्त्री का आत्मसम्मान और पहचान दोनों कुचल कर रह गया। समकालीन स्त्री आत्मसम्मान एवं अपने अस्तित्व के संबंध में अधिक जागरूक और सतर्क है। इस दृष्टि से मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब', कृष्णा सोबती का 'ऐ लड़की', प्रभा खेतान की 'पीली आँधी' और चित्रा मुद्गल का 'आवां' उपन्यास प्रमुख हैं। ये सारे उपन्यास पुरुषसत्तात्मक समाज में नारी-शोषण और उससे मुक्ति के लिए संघर्ष की कथा कहते हैं। 'कठगुलाब' की स्त्री पात्र 'असिमा' की माँ को जब उसका पति त्याग देता है तब उसके आत्मसम्मान को ठेस लगती है। ऐसे पति से किसी भी प्रकार की सहायता लेकर वह अपने आत्मसम्मान को चोट पहुँचाना नहीं चाहती – "जिसने मेरे आत्मसम्मान को ठेस पहुँचायी, उससे मैं पैसा क्यों लूँ।"[2] माँ की तरह ही असिमा तथा उपन्यास के अन्य स्त्री पात्र भी आत्मसम्मान के प्रति सजग दिखाई देती हैं। कृष्णा सोबती के उपन्यास 'ऐ लड़की' में अम्मु अपनी बेटी चित्रा को स्वाभिमानी बनने की सीख देते हुए कहती है – "न भी हो दुनियादारी वाली चौखट, तो भी अपने आप में तो आप हो। लड़की का अपने में आप होना परम है, श्रेष्ठ है।"[3] आज की स्त्री सर्वप्रथम अपने स्वत्व की स्पष्ट घोषणा करती है। ऐसा स्वत्व जो पुरुष से बहुत पृथक है, भिन्न है। वह पुरुष की छाया मात्र नहीं है। सदियों से स्वयं को पुरूष की छाया मात्र मानते-मानते स्वयं का अस्तित्व ही खो बैठी है। स्त्री की पहचान इतनी ही रह जाती है, जिस मात्रा में वह पुरुष से संबंधित होती है। यही वजह है कि माँ, बहन, बेटी और पत्नी की पहचान है, परन्तु 'एक स्त्री की पहचान' नहीं। आज उसके लिए एक स्त्री होना पर्याप्त है, दूसरे संबंधों को दोयम दर्जा देती है।

प्रभा खेतान द्वारा लिखित उपन्यास 'पीली आंधी' की चित्रा ऐसी ही मानसिकता रखती है। आत्मसम्मान और अस्तित्व के संघर्ष में सब कुछ त्यागने को तत्पर दिखती है। पति सुजीत जब अन्य स्त्री सीमा से प्रेम के बंधन मे बंध जाता है। सीमा गर्भवती होती है, तब भी वह दोनों से नाराज नहीं होती। उसका मानना है कि अगर सुजीत उससे प्रेम नहीं करता तो वह स्वंय को इस धोखे में क्यों रखे? सुजीत से प्यार की भीख क्यों माँगे – "जब प्रेम नहीं तब किस बात की जलालत? प्रेम की भीख नहीं मांगी जाती। मेरा अपना कोई आत्मसम्मान नहीं? और यह किस शास्त्र में लिखा है कि किसी से प्रेम करो तो ताउम्र करते जाओं।"[4] चित्रा आज की नारी है। चित्रा जैसी स्वाभिमानी स्त्री, पुरुष से प्रेम की भीख नहीं मांगती। इससे बेहतर वह अलग होने का फैसला करती है। चित्रा स्पष्ट घोषणा करती है कि प्रेम आज की स्त्रियों के लिए पाँव की बेड़ियाँ नहीं हो सकती। वह जीवन में प्रेम के महत्व को समझती है, परन्तु प्रेम में धोखा मिलने पर जीवन पर्यन्त आँसू बहाना गंवारा नहीं है। वह स्वयं ऐसी रिश्तों से स्वतंत्र होती है और पुरुष को भी स्वतंत्र करने का साहस रखती है।

चित्रा मुदगल के स्त्री पात्र भी पारंपरिक नहीं हैं। लीक से हटकर अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता के लिए संघर्ष करती हैं। अपनी मुक्ति के लिए तथाकथित सामंती मूल्यों से टकरा जाती है। 'आवां' उपन्यास की नायिका नमिता पाण्डे ऐसी ही स्त्री चरित्र है। अन्ना साहब उसकी इज्जत से खिलवाड़ करने की कोशिश करता है तो वह नौकरी ही छोड़ देती है। अर्थाभाव के कारण मुसीबत झेलने को तैयार है, लेकिन आत्मसम्मान से समझौता करना नहीं चाहती। नौकरी छोड़ने की बात पर कहती है – "उन्होंने दी थी पर मैंने छोड़ दी क्योंकि कभी-कभी नौकरी से भी ज्यादा सख्त जरूरत होती है अपने सम्मान की रक्षा।"[5] अलका सरावगी के उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास' में मारवाड़ी समाज की पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी की सोच में अंतर्द्वन्द्व देखा जाता है। उपन्यास की नई पीढ़ी पुरुष सामंतवाद द्वारा बनाई गई पाबंदियों पर अनेक प्रश्न उठाती हैं। अपनी पुरानी पीढ़ी को इस गुलामी से मुक्त करना चाहती हैं। किशोर बाबू की छोटी लड़की पूछती है – "बड़ी माँ तुम बताओं कि पापा इस तरह क्यों सोचते हैं लड़कियों के बारे में? हम क्यों नहीं खेल सकते बगल के मकान की लड़कियों से? हम क्यों नहीं खड़े हो सकते बरामदे में? हम क्यों नहीं जा सकते सहेलियों के घर? हम क्यों कैद है, पिंजरे में बंद चिड़ियों की तरह?"[6]

आत्मसम्मान और आत्मनिरर्भरता के इस जंग में स्त्री, शिक्षा को अनिवार्य अस्त्र मानती है। शिक्षा का अभाव उसे कमजोर और निरीह बनाता है। जीवन-निर्वाह में असमर्थ स्त्री सदैव पुरुष के अहसानों तले जीवित रहने को विवश होती है। अतः शिक्षा ही उसे आत्मनिर्भर बनाकर पुरुष की गुलामी से मुक्त कर सकती है। 'कठगुलाब' उपन्यास की स्मिता आत्मनिर्भर बनना चाहती है। वह शादी के बजाय शिक्षा का रास्ता अपनाती है। 'ऐ लड़की' उपन्यास की 'सूसन' भी नर्सिंग पढ़ना चाहती है। वह शादी से इंकार करती है।

साक्षर और आत्मनिर्भर स्त्रियों की संख्या जितनी बढ़ रही है, स्त्री-जीवन का अंतिम सत्य विवाह और मातृत्व पर भी सवाल उठ रहे हैं। समकालीन कथा साहित्य में मूल्य विघटन, मूल्य संक्रांति, मूल्यहीनता की दुहाई बार-बार दी जा रही है। जो बाह्य जगत में राजनैतिक बिडंबनाओं, आर्थिक विसंगतियों और सामाजिक विषमताओं के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। व्यक्तिक स्तर पर यह भय, कुंठा, संत्रास, अलगाव, संशय, स्त्री-पुरुष के संबंधों में क्रांतिकारी परिवर्तन तथा यौन-स्वच्छन्दता के रूप में देखा जा सकता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति-व्यक्ति संबंध और व्यक्ति-समाज संबंध नये अर्थ ग्रहण कर रहे हैं। आज विवाह और परिवार की व्यवस्था विघटित और अर्थहीन होती जा रही है। 'पीली आँधी' उपन्यास की सीमा पति गौतम से संतुष्ट नहीं है। सुजीत से शारीरिक संबंध बनाती है। सुजीत भी अपनी पत्नी चित्रा से संतुष्ट नहीं होता। दोनों को यह अनैतिक संबंध रखने में कोई बुराई नजर नहीं आती। सीमा का मानना है - "किसी पराए पुरुष को यदि मैं अपनाना चाहती हूँ तो अनोखा क्या है? क्या कभी विवाहित स्त्री ने अन्य विवाहित पुरुष से प्यार नहीं किया? फिर यह भय और ग्लानि क्यों?"[7]

भारतीय संस्कृति में विवाह केवल दो शरीरों का नहीं, दो आत्माओं का मिलन माना जाता है। सात फेरों से सात जन्मों तक के साथ को महत्व दिया जाता है। विडंबना है कि यह बंधन प्रायः स्त्री के लिए सीमित कर दिये गए हैं। पुरुष विवाह के बाहर भी अनैतिक संबंध बनाता रहा है। समकालीन स्त्री ऐसे एकपक्षीय सिद्धांतों को स्वीकारने के पक्ष में नहीं है। उनका मानना है, दुखी विवाहित जीवन से बेहतर है

अविवाहित रहना या तलाक लेकर अकेले रहना। 'आवां' उपन्यास की गौतमी पति के विषय में कहती है – "पति क्या होता है, आधिकारिक बलात्कारी। आथोराइज्ड – मैंने अशोक को उस अधिकार से वंचित रखा है कि..... जिंदगी में आदमी कभी अकेला नहीं होता, अगर वह यह सोच बना ले कि वह अकेला नहीं है।"[8] दूसरी ओर युवा पीढ़ी विवाह को कैरियर में बाधा के रूप में भी देखती है। अतः अविवाहित रहकर ऐच्छिक संबंधों में बंधे रहना और जब इच्छा हो संबंध तोड़कर दूसरे साथी की तलाश करना एक ट्रेडिशन बन गया है। आज करियर के लिए विवाह न करना, किए गए विवाह को अंत तक न निभाना, विवाह के चलते बाह्य अनैतिक संबंध रखना आम बात हो गई है। 'पीली आँधी' की सीमा, चित्रा, 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की प्रिया 'कठगुलाब' की नर्मदा 'आपका बंटी' की शकुन आदि ऐसी स्त्री पात्र हैं, जो विवाह संस्थान की धज्जियाँ उड़ाती हैं। समकालीन स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र, भावनात्मक रूप से परिपक्व और बौद्धिक रूप से सजग है। वह बंधन युक्त संबंधों से मिलने वाली सुख की जगह बंधन मुक्त भौतिक बौद्धिक जीवन जीने की आकांक्षी है। यौन-स्वच्छन्दता का खुलकर समर्थन करती है।

समकालीन स्त्री-लेखन में स्त्री का एक अन्य रूप 'कामकाजी स्त्री' या नौकरी पेशा स्त्री के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। कामकाजी स्त्री कमाने के साथ खर्च का अधिकार भी पा रही है, किन्तु पुरुष तंत्र वाले इस समाज में तालमेल बिठाने में असफल हो रही है। फलस्वरूप अनेक समस्याओं से भी गुजरती है। स्त्री की बदली हुई भूमिका पुरुष ने स्वीकार ली है किन्तु पत्नी की बदली भूमिका स्वीकारने को तैयार नहीं है। पत्नि में स्वतंत्रता, समानता और स्वनिर्णय की भावना जागे, ऐसा नहीं चाहता। परिणामतः स्त्री दोनों रूपों में मानसिक द्वन्द्व झेलती है। करियर और सफलता के लिए अन्य संबंधो को भी स्वीकृति देती है। 'आवां' उपन्यास की 'नमिता पाण्डे' अपने करियर के लिए संजय कनोई के यौन-शोषण का शिकार होती है। उसे नमिता से बच्चा चाहिए, लेकिन वह भी नमिता का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकारने के पक्ष में नहीं है। स्त्री करियर के लिए भी पुरुषों से संघर्ष कर रही है।

समकालीन स्त्री-लेखन भूमंडलीकरण के दुष्परिणामों को भी रेखांकित कर रहा है। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न बाजारवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति ने स्त्री को अपनी चपेट में ले लिया है। इस व्यावसायिक संस्कृति में स्त्री-शोषण के नये-नये कोण उभरकर आ रहे हैं। बाजार की चमक ने उसे चकाचौंध कर दिया है। इस बाजार में वह पुनः पुरुष द्वारा छली जा रही है। चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में विज्ञापन-जगत में हो रहे नारी-शोषण को रेखांकित किया है। 'आवां' उपन्यास में प्रभा खेतान ने मुंबई के मजदूर संगठनों, उसमें चलने वाली राजनीति तथा स्त्री यौन-शोषण से पर्दा उठाया है।

समकालीन स्त्री-लेखन स्त्री के बदलते बहुआयामी संदर्भों को अभिव्यक्त करता है। इन लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में स्त्री को लेकर समाज में व्याप्त पूर्वाग्रह, पुरुष की दमित मानसिकता, दोयम दर्जे की पीड़ा आदि का मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय विश्लेषण भी किया है। स्त्री का विद्रोह, स्वतंत्रता और मुक्ति की चाह चरम पर है। यहाँ ध्यातव्य है कि समकालीन स्त्री-लेखन पुरुष-विरोधी नही है, बल्कि पुरुषसत्ता और उसके दोगलेपन का विरोधी है। स्त्री को पुरुष के हिस्से का कुछ नहीं चाहीए। वह अपने हिस्से और हक के लिए संघर्षरत है। हिंदी की प्रथम आधुनिक महिला-चिंतक महादेवी वर्मा का कथन दृष्टव्य है - "हमें न किसी से जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए, न किसी पर प्रभुता। केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए, जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है। परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी।"[9]

उपसंहार

भारत जैसे पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री सदियों से अपमान उपेक्षा तथा उत्पीड़न की शिकार रही है। वह सबके करीब थी, फिर भी सबसे दूर रही है। उसके सारे आत्मिक और मानसिक विकास के रास्ते बंद पड़े थे। वह पुरुष से पृथक, नगण्य मानी जाती रही है। समाज और साहित्य में ऐसी स्त्री की स्थिति, उसके भूत, वर्तमान और भविष्य को लेकर चिंतन का आरंभ आधुनिक युग की देन है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में स्त्री-जीवन और स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। समकालीन स्त्री-लेखन में भी उसके बदलते जीवन संदर्भ में, बदलती चिंतन-धारा तथा पितृसत्ता से संघर्ष की अभिव्यक्ति का श्रीगणेश होता है। साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। दोनों एक-दूसरे के प्रभाव में रचे-गढ़े जाते रहे हैं। समकालीन स्त्री-चिंतन या स्त्री-लेखन इसका अपवाद नहीं है। उपन्यासों में स्त्री चेतना के अनेक रूप अभिव्यक्त हुए हैं। कहीं वह अपनी अस्मिता के लिए सजग है तो कहीं अपने कार्यों द्वारा, तो कहीं विचारों द्वारा बदलते मूल्यों को अभिव्यक्त करती है। उपन्यासों में व्यक्त स्त्री-संघर्ष तथाकथित दासी और देवी के द्वन्द्व से मानवी बनने का है। इस संघर्ष में वह एक ओर पितृसत्ता से टकराती है तो दूसरी ओर परंपरावादी स्त्रियों के विरोध का भी सामना करती है। यह संघर्ष सर्वप्रथम उसके अपनो से और उसके घर से ही आरंभ होता है सवैधानिक समता, स्त्री-विमर्श की गोद में जन्में स्त्री-लेखन, स्त्री-चिंतन तथा उसके संघर्ष के परिणामस्वरूप आज उसकी स्थिति पूर्व से बेहतर है। पुरुष मानसिकता में भी कमोबेश परिवर्तन आ रहा है, किन्तु देश की आधी आबादी के हक और मुक्ति के लिए समाज की आधी मानसिकता में परिवर्तन पर्याप्त नहीं है। अतः परिवार और समाज में स्त्री की सत्ता और अस्मिता को पुरुष जब तक पूर्णतः स्वीकृति नहीं देते, उसके संघर्ष की यात्रा तब तक चलती रहेगी।

संदर्भ सूची

1. अंतरंग संगीनी (पत्रिका), नववर्षांक, 1999, राजकिशोर, पृष्ठ – 95
2. कठगुलाब : मृदुला गर्ग, पृष्ठ – 166
3. ऐ लड़की : कृष्णा सोबती, पृष्ठ – 57
4. पीली आँधी : प्रभा खेतान, पृष्ठ – 120
5. आवां : चित्रा मुद्गल, पृष्ठ – 74
6. कलिकथा वाया बाइपास : अलका सरावगी, पृष्ठ – 58
7. पीली आँधी : प्रभा खेतान, पृष्ठ – 206

8. आवां : चित्रा मुद्गल, पृष्ठ – 500
9. श्रृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृष्ठ- 23